वर्ष 3 अंक 11 अप्रैल-जून 2017

ISSN 2394-5540

अनुरंजिका

ANURANJIKA

अन्ताराष्ट्रिय [illegible] शोध पत्रिका

AN INTERNATIONAL REASERCH REFEREED JOURNAL

प्रधानसम्पादक

डॉ. उमाशंकर चतुर्वेदी 'कंचन'

संस्कृति प्रकाशन, वाराणसी

 ISSN 2394-5540

विषय-सूची

क्र.सं.	लेखशीर्षक	लेखकनाम	पृष्ठसंख्या
1	हृदयरोग का वैज्ञानिक अध्ययन	रमांशकर प्रसाद	1-3
2	वाल्मीकि एवं भावार्थ रामायण में वर्णित 'रावण-चरित' का तुलनात्मक अध्ययन	अशीष कुमार तिवारी	4-9
3	सामर्थ्यविचारः	नीरज शर्मा	10-18
4	उपनिषदां वैशिष्ट्यम्	शालू शर्मा	19-22
5	संस्कृत भाषा के प्रत्ययों का अनुशीलन	आयुषी राणा	23-29
6	मानव जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय की उपादेयता	विवेक जायसवाल	30-42
7	वृत्तिस्वरूपविमर्शः	रविकान्त त्रिपाठी	43-45
8	वेदों में पर्यावरण संरक्षण	राम प्रसाद	46-50
9	मोग्गलानव्याकरणस्य रचनाशैली	आनन्दकुमारः	51-55
10	प्राचीनभारते दत्तकविधानस्य समीक्षणम्	रजनी कुमारी	56-62
11	वैदिक साहित्य में मातृस्वरूपा नारी	डॉ. सुकदेव बाजपेयी	63-65
12	शास्त्रे साहित्यशास्त्रस्य महत्त्वम्	रोहितकुमारमिश्रः	66-67
13	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षक और शिक्षा का महत्त्व	डॉ. किरण आर्या	68-70
14	पुराणेषु राजनीतिविद्या- विमर्शः	विपिन कुमार द्विवेदी	71-74
15	महाकवि अश्वघोष की दार्शनिक अवधारणा	डॉ. अरविन्द कुमार	75-77

अनुरंजिका शोध पत्रिका वर्ष 3 अंक 11 अप्रैल-जून 2017/ISSN 2394-5540

ISSN 2394-5540

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षक और शिक्षा का महत्त्व

डॉ. किरण आर्या
सहायक-प्राध्यापक
संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि.

विश्वपटल पर किसी भी राष्ट्र के चहुंमुखी विकास मे सुदीर्घकालीन योगदान शिक्षा का ही होता है, धरा का कोई भी राष्ट्र शिक्षा के बिना विकास की शाखाओं को प्रसृत करने में सक्षम नहीं हुआ यदि यत्किञ्चिद् हुआ भी तो महत्त्वहीन सुन्दर दीपक की तपह विना जले हुये तमस् से घिरे हुये देखे गये। आर्यावर्त में पूर्व शिक्षा प्रणाली और शिक्षक गुरु भव्य भानु सदृश होते थे जो स्वयं को प्रमाणित कर धरा को अन्धकार से मुक्त रखते थे अत: भारत की पूर्व शिक्षा प्रणाली आत्मवन्दनीय और शिक्षक अभिनन्दनीय हुआ करते थे।

भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति पाश्चात्य जगत् की देन है अत: उसमें पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, जीवन दर्शन और रीति नीति का यथेष्ट समावेश होना स्वाभाविक ही है। पाश्चात्य जीवन के मूल में भौतिकवाद की ही प्रधानता है, और प्रत्यक्ष रूप से उसके विभिन्न पक्षों के विकास की प्रेरक भावना भौतिकता ही है। ऐहिक सुख समृद्धि की तीव्र लालसा ने पश्चिम की विश्वविजय की दुर्दयनीय महत्वाकांक्षा को उद्दीप्त किया और वैज्ञानिक प्रगति ने उसमें और योगदान दिया। फलस्वरूप महायुद्धों का भयंकर परिणाम यह हुआ कि मानवता की जड़ें हिल गईं। भारत में प्रचलित शिक्षापद्धति के मूल में पाश्चात्य जगत् के इसी भौतिकवादी दर्शन की छाप दृष्टिगोचर होती है। यह पद्धति हमारे देश की आध्यात्मिक संस्कृति के सर्वथा प्रतिकूल है यह हमें जीवन के उन्नत लक्ष्य से विमुख करके घोर पतन की ही ओर ले चलेगी। अत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत को ऐसी शिक्षापद्धति की आवश्यकता है जिसमें राष्ट्रिय तत्त्वो की प्रमुखता हो ताकि भारत के प्राचीन पुन: प्रतिष्ठित किया जा सके। इतना ही नहीं वर्तमान शिक्षा की नीव एक ठोस जीवन दर्शन भारत के आध्यात्मिक दर्शन के आधार पर खड़ी की जानी चाहिये जिससे कि भारतीय जाति में आत्मविश्वास एवं सुदृढता आ सके और भारत सम्पूर्ण विश्व को अपनी आध्यात्मिकता का सन्देश देकर अपने विशिष्ट एवं निर्दिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति कर सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त यह जानने के लिये कि वे कौन से शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त हैं जिनको शिक्षापद्धति में प्रयोग करने से शिक्षा 'राष्ट्रिय शिक्षा' कहलायेगी मैं उन शिक्षादार्शनिकों के शिक्षा दर्शन का वर्णन करना चाहूंगी जिन्होंने भारत के पुनरुत्थान काल में राष्ट्रिय और सांस्कृतिक चेतना को उद्दीप्त करने का अकथनीय प्रयास किया। प्रत्येक दार्शनिक साथ ही साथ शिक्षक भी होता है क्योंकि हमारे देश में दर्शन केवल चिन्तन का विषय नहीं वरन् जीवन में प्रयोग एवं व्यवहार का भी विषय रहा।

भारत की दर्शन परम्परा प्रधानत: आदर्शवादी है आदर्शवादी सिद्धान्तों के परख की कसौटी है उनकी शाश्वता और सार्वभौमिकता अर्वाचीन भारतीय शिक्षा दार्शनिकों ने यह प्रमाणित किया है कि भारतीय शिक्षा के सिद्धान्त आदर्शवादी हैं वे प्राचीनकाल में भी हमारे देश में व्यवहत रहे हैं और आज भी उसी रूप में व्यवहार्य है केवल युगीन परिस्थितियों के अनुकूल इन सिद्धान्तों के पालन के बाह्य साधनों में हेर फेर की जा सकती है, ये सिद्धान्त सार्वभौम भी हैं क्योंकि भारतीय होते हुये भी वे प्रत्येक देश व जाति के उत्थान के लिये, यदि उन्हें उपयोग किया जाये तो वे सक्षम हैं इसका कारण है कि भारतीय दर्शन किसी एक विशेष धर्म हिन्दू, मुस्लिम,ईसाई आदि के अनुयायियों को सम्बोधित नहीं करता है। इसका विश्वास उस आत्मा में है जो प्रत्येक मानव में प्रतिबिम्बित है। विश्वशान्ति और विश्वएकता आज के युग की पुकार है। भारत की इसी शान्तिवादी एवं आदर्शवादी विचारधारा का अनुसरण करने से ही संसार का कल्याण संभव है।

महान् शिक्षा दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द के विचार में- शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है ।[1] यह पूर्णता कहीं बाहर से नहीं आती वरन् मनुष्य के भीतर ही छिपी रहती है। इस प्रकार शिक्षा मानव आत्मा में निहित ज्ञान का अन्वेषण और प्रकाशन रहती है शिक्षा की इस वेदान्तिक परिभाषा की तुलना हम किसी सीमा तक

---

[1] Ibid p. 304

पेस्टालाजी द्वारा की गई शिक्षा की परिभाषा से कर सकते है। जिसके अनुसार शिक्षा 'मनुष्य में अन्तर्निहित शक्तियों का प्राकृतिक प्रगतिशील एवं विरोधहीन विकास है।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षणपद्धति सम्बन्धी विचार फ्रॉबेल के विचारों से मिलते-जुलते हैं। विवेकानन्द और फ्रॉबेल दोनों बालक की उपमा एक पौधे से देते हैं। जिस प्रकार बरगद के बीज में विकास करके एक बड़ा वृक्ष बनने की शक्ति विद्यमान रहती है उसी प्रकार बालक के जीवनाधार तत्त्व में अगाध बुद्धि निवास करती है। पौधे के प्राकृतिक विकास की भांति ही बालक का भी अपनी प्रकृति के अनुरूप विकास होता है जिस प्रकार हम पौधे को केवल पोषक तत्त्व देते हैं उसकी रक्षा करते हैं और वह उनको ग्रहण करके भी अपनी प्रकृति के अनुसार ही बढ़ता है उसी प्रकार बालक को शिक्षा देते समय हमें केवल उसके मार्ग की बाधाओं को दूर करना चाहिये तथा उसके सम्मुख विकास का क्षेत्र प्रस्तुत करना चाहिये ताकि अवसर प्राप्ति के अभाव में उसमें अन्तर्निहित विपुल शक्तियाँ नष्ट न हो जायें। इससे यह स्पष्ट है कि बालक स्वयं अपना शिक्षक है वह अपने आप शिक्षित होता है शिक्षक का कार्य तो केवल उसके भीतर निहित ज्ञान को जागृत करना और उसका मार्गदर्शन करना है। ताकि वह अपनी बृद्धि द्वारा अपनी इन्द्रियों का समुचित उपयोग कर सके। शिक्षक को चाहिये कि वह बालक की प्रवृतियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये शिक्षा प्रदान करे। शिक्षक को गालक की विशेष रुचियों या झुकावों को प्रोत्साहित करना चाहिये। बालकों के मस्तिष्क पर सक्रिय या रचनात्मक विचारों का प्रभाव डालना चाहिये।

शिक्षक के गुणों का उल्लेख करते हुये स्वामी जी ने कहा है कि शिक्षक को पूर्ण ज्ञानी होना चाहिये। उसे धर्मग्रन्थों का सारतत्त्व जानना चाहिये सारे संसार के लोग बाइबिल,कुरान और वेद पढ़ते हैं परन्तु वे तो केवल शब्द, वाक्यरचना, शब्दव्युत्पत्ति और भाषाविज्ञान हैं धर्म की शुष्क अस्थियां हैं जो शिक्षक केवल शब्दों में उलझा रहता है उन्हीं पर जोर देता है वह आत्मा से परिचित नहीं हो पाता। एक सच्चे अध्यापक को ग्रन्थों की मूल आत्मा का ज्ञान होना चाहिये[1] जो अध्यापक कोरे शब्दों से शिक्षार्थी को सन्तुष्टकरना चाहता है जो धर्म का ज्ञान तो रखता है किन्तु धर्म के सत्य को अपने जीवन में नहीं उतारता वह धर्म के रहस्य को धर्म के तत्त्व को नहीं पहचानता।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में चरित्र निर्माण के उद्देश्य को विशेष महत्वपूर्ण माना है। मनुष्य के इस चरित्र निर्माण में विचारों का प्रमुख स्थान होता है जिस मनुष्य का जैसा व्यवहार होता है उसी के अनुरूप उसका चरित्र भी होता है। स्वामी जी का कहना है हम और कुछ नहीं हैं वरन् अपने विचारों द्वारा निर्मित या उनके प्रतिबिम्ब हैं।

शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में स्वामी जी का विचार है कि जनसाधारण को उनकी मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिये उनका कहना है कि –उन्हें विचार दो सूचनाओं का संग्रह वे स्वयं कर लेंगे। परन्तु जनसाधारण की उन्नत स्थिति को स्थिर रखने के लिये उन्हें शिक्षा के साथ एक और वस्तु की आवश्यकता है और वह है संस्कृति। मनुष्य को सुसंस्कृत होनाचाहिये उन्हें अपनी संस्कृति से न केवल पूर्णरूप से परिचित होना चाहिये वरन् अपनी संस्कृति का पालन भी करना चाहिये। मातृभाषा और अपने देश संस्कृति का समर्थन करने के साथ–साथ स्वामी जी संस्कृत भाषा एवं शिक्षा के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे वह सामान्य शिक्षा के साथ संस्कृत की शिक्षा भी आवश्यक मानते थे क्योंकि 'संस्कृत शब्दों की ध्वनि नहीं जाति को सम्मान बल, एवं शक्ति प्रदान करती है' – सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा (यजुर्वेद)

इस प्रकार मनुष्य का निर्माण करने वाली सर्वतोन्मुखी स्वामी द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा की हमें आज सतत आवश्यकता है।

दूसरी महान् शिक्षा दार्शनिक डॉ. एनी बेसेण्ट के विचार में – मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं एवं शक्तियों को विकसित और प्रशिक्षित करना ही शिक्षा है। ये क्षमतायें और शक्तियाँ पूर्वजन्म के संस्कारों के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं और उनका विकास स्वर्गलोक या देवलोक में होता है।

डॉ. एनी बेसेण्ट का कहना है कि अध्यापक को शिक्षापद्धति का दास नहीं होना चाहिये यद्यपि शिक्षापद्धति एक अनिवार्य साधन है तथापि अध्यापक को इस बात में सदैव सावधान रहना चाहिये कि यह शिक्षा के उद्देश्य में सहायक होकर मनुष्य के जीवनोद्देश्य में सहायता प्रदान करे। उसे छात्रों की मौलिकता एवं स्वतन्त्रता की भावना का स्वागत करना चाहिये। शिक्षा कोई ऐसा मानदण्ड नहीं है जिसके अनुसार छात्र अपने जीवन को ढाले, वरन् वह एक

---

[1] The complete works vol.III p. 48

प्रेरणा है यह आशा की जाती है कि छात्र प्रेरणा से अनुप्राणित हों और उनके जीवन में इस प्रेरणा के प्रति प्रतिक्रिया हो।[1]

डॉ. बेसेण्ट ने शिक्षा के चतुरांगीय उद्देश्य बताते हुये – धार्मिक शिक्षा, मानसिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा पर जोर दिया है उनके विचार में शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो जीवन के दोनों पक्षों (जीवन पक्ष और राजनीति पक्ष) को ध्यान में रखकर मानव स्वभाव के चारों अंगों – धार्मिक, मानसिक, नैतिक और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें।

उनके विचार में राष्ट्रिय शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो इसी प्रकार की शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा कहा जा सकता है। उनका कथन है – हमें शिक्षा में उन भारतीय आदर्शों को स्थान देना चाहिये जो यहां के वातावरण में प्रस्फुटित हो चुके हों क्योंकि सभी राष्ट्रों के आदर्श होते हैं जो वहां के राष्ट्रीयजीवन को अनुप्रेरित करते हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि विदेशी शिक्षा योजना के अन्तर्गत किसी भी देश कोई भी युवक पूर्ण विकास नहीं कर सकता है। भारतीय आदर्शों और भारतीय आत्मशक्ति से परिपूर्ण शिक्षा योजना ही भारत के लिये हितकर हो सकती है।[2]

तृतीय महान् शिक्षा दार्शनिक रवीन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है – मनुष्य को मनुष्य बनाना। उनके विचार में मनुष्य को जो जिस रूप में दीखता है वह उसी के अनुसार लक्ष्य निर्धारित करता है और लक्ष्य के अनुरूप ही समस्त शिक्षा का आयोजन करता है।

पाश्चात्य सभ्यता और लक्ष्य के सम्बन्ध में विचार करते हुये रवीन्द्रनाथ जी का कहना है कि पश्चिम ने मनुष्य को किसी स्थान पर लक्ष्य निर्धारित नहीं करने दिया है कारण पाश्चात्य सभ्यता का मूलमन्त्र है अथवा सारतत्त्व है – प्रगति, प्रगति का अर्थ है निरन्तर चलते रहना, लक्ष्य तक पहुंचना नहीं, शिकार के पीछे दौड़ते रहना शिकार पाना नहीं। भारत का जीवन दर्शन इससे भिन्न है इसका एक लक्ष्य है औरउस लक्ष्य तक पहुंचने में ही जीवन की सार्थकता मानी गयी है। रवीन्द्रनाथ बालकों को दण्ड देने के सम्बन्ध में अध्यापक को सचेत करते हैं उन्होंने दण्ड देने की परिपाटी का विरोध किया है उनका कहना है कि क्षमा करना अध्यापक का काम है।

रवीन्द्र ने स्वीकारा है कि बालकों को पूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिये विदेशी भाषा उचित माध्यम नहीं है। विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देना एक बहुत बड़ा दोष है जिससे कतिपय बालक जिन्हें वह भाषा नहीं आती, अध्ययन से विरत हो जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम यह होता है कि हम अनिवार्यत: पश्चिम से प्रेरणा लेने के लिये बाध्य हो जाते हैं। उनका कहना है कि शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिये ऐसी व्यवस्था से ही उनका पूर्ण विकास सम्भव है।[3]

निष्कर्ष –

अत: वैज्ञानिक युग में हमें निश्चित रूप से अन्य देशों की तरह उन्नति के शिखर पर जाना ही होगा किन्तु जिस विज्ञान के द्वारा जीवन को समुचित चलाने हेतु उपकरणों का निर्माण हुआ उनका सदुपयोग कम हो रहा है दुरुपयोग ज्यादा हो रहा है यहां इनको दुरुपयोग से ही रोका जाये अर्थात् उस प्राचीन ज्ञान को भूलकर विज्ञान में पूर्ण प्रगति करना अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र संधान सदृश ही होगा।

अत: हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो संस्कार संस्कृति के आधार पर हो वैचारिक पृष्ठभूमि की सुदृढ़ नींव हो राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत हो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भटकाव के पथ बंद कर सही मार्ग को दर्शने वाली हो, और यह बताती हो कि उन्नति सभी को करना चाहिये अभिव्यक्ति की आजादी सभी को हो किन्तु राष्ट्र से परे नहीं जब तक शिक्षा पद्धति में सुधार नहीं होगा तब तक राष्ट्र में ज्वलन्त समस्याओं का जन्म होता रहेगा चाहे राष्ट्रविरोधी नारे हो या बढ़ती आत्महत्यायें हों, या ज्वलन्त बलात्कार की लपटें हों।

* * *

---

[1] भारतीय शिक्षा दार्शनिक पृ. ९६

[2] भारतीय शिक्षा दार्शनिक पृ. १०८

[3] भारतीय शिक्षा दार्शनिक पृ. १२०